دسمبر ۲۰۱۴ء

ماہنامہ شعاع عمل لکھنؤ

قالَ اللّٰہُ تبارکَ وتعالیٰ قدْ جاءکُمْ مِنَ اللّٰہِ نُورٌ وَکِتابٌ مُبِینٌ

بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب



نورہدایت فاؤنڈیشن، حسینیہ غفرانمآبؒ، چوک، لکھنؤ-۳

R.N.I.No. UPBIL/2004/13526
Postal Regd. No.SSP/LW/NP-75/2014-16 Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month

Annual Rs. 200/- **Per copy-Rs. 20/-**

SHUA-E-AMAL

Lucknow

शुआ-ए-अमल

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ

DECEMBER 2014





NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION
Imambara Ghufran Maab, Chowk, Lucknow-3 (U.P.) INDIA, Ph.:0522-2252230

बिस्मेही तआला

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन की

इस्लामी, ज्ञान व शोध

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

दिसम्बर 2014 ई०

शुआ-ए-अमल

"लखनऊ"

वर्ष 11 — अंक 6

न्यास संस्थापन

15 जमादिलऊला 1424 हि० / 16 जुलाई 2003 ई०

पत्रिका विमोचन

15 जमादिलऊला 1425 हि० / जुलाई 2004 ई०

पर्यवेक्षक:
मु० र० आबिद, गोलागंज लखनऊ

मिलने का पता

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत गुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक, लखनऊ - 3

Phone No: 0522-2252230 Mobile No: 09335276180 — 09335996808

प्रकाशक,मुद्रक एंव स्वामी सै0 कल्बे जवाद नकवी द्वारा निज़ामी प्रेस, अपोज़िट हसनैन मार्केट, विक्टोरिया स्ट्रीट लखनऊ (उ0 प्र0) से मुद्रित तथा नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन, इमाम बाड़ा गुफ़रान मआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड चौक लखनऊ (उ0 प्र0) से प्रकाशित, सम्पादक सै0 मुस्तफा हुसैन नक़वी

Per Copy 20/- Annual 200/-

lEiknu lfefr

- डॉ0 अमानत हुसैन नक़वी
- वासिफ़ अहमद नक़वी 'समीर'
- मौलाना महदी रज़ा, घोसी, मऊ
- मौलाना फ़ैज़ान जाफ़र अली
- शाहिद अली आज़मी
- नसीर हुसैन जलालपूरी
- मिर्ज़ा हुमायूँ क़दर
- डॉ0 आरिफ़ अब्बास
- रेहान आलम, लखनऊ
- बिन्ते ज़हरा 'नदल हिन्दी'

- tQj+gqlS fjteh ¼;wlh½ Q+eZ;bZ
- bjQku gSnj] ¼;wlh½ Q+e/; çnsk
- dQ+r d kdu el] ¼;wlh½ Q+ngyh

R.N.I. No.
UPBIL/2004/13526

▼▼▼

Postal Regd. No.
SSP/LW/NP-75/2008-10

●●●

WEBSITE:
www.noorehidayatfoundation.org
www.naqeeblucknow.com

E_mail:
noorehidayat@yahoo.com
noorehidayat@gmail.com

okf"kZd v'kknu

1– एक साल के लिए 200/-
2– पांच साल के लिए 800/-
3– लाईफ़ मिम्बरशिप 4000/-

fo'k; lwph

fnlEcj 2014bZ
मुहर्रम व सफ़र : 1436हि0

u0	ys[k o ys[kd	i"B
1-	ogkcher dk lR; सैय्यदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी नक़वी ताबासराह	3
2-	dqorg myek ekSykuk l¸;n vkdk gl u मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी असीफ़ जायसी	5
3-	engs mEeds gq lw मोहतरमा नदल हिन्दी	12
4-	eq[; lekpkj इदारा	13

वहाबी मत का सत्य

y§kd %& vk;rqYykfgy mtek l ;nq myekek§kukl 9 vyhudh+ud®h
fdLr %3 lEiknu %ujsfgnk;r QkmUMs'ku

जिसके बाद से सम्पूर्ण नज्द पर लड़ झगड़ कर आले सऊद (सऊद वंश) का राज्य हो गया। यहाँ तक कि 1206 में मुहम्मद बिन अब्दुल वहाब की मृत्यु हो गई मगर आले सऊद के राजा उस मत के प्रचार–प्रसार में सेना की शक्ति के साथ मगन रहे।

मुहम्मद बिन सऊद के बाद उसका पुत्र अब्दुल अज़ीज़ हुआ। यह भी पास पड़ोस में अपनी फौजें भेजता रहा और अब्दुल अज़ीज़ के बाद सऊद हुआ। यह अपने पिता से भी अधिक कठोर था। उसने मुसलमानों को हज से रोक दिया और तुर्की के सुल्तान के खिलाफ़ विद्रोह किया। मगर इसके बाद यह सब गतिविधियाँ नज्द के इलाके तक ही सीमित थीं। यहाँ तक कि प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की को जर्मनी का साथ देने के कारण अंग्रेजों के कोप का शिकार बनना पड़ा और जर्मनी की पराजय से शक्तिहीन भी हो गया तो पहले अंग्रेजों ने मक्का शरीफ के महापौर से तुर्की के खिलाफ़ स्वतन्त्रता का झण्डा उठवाया फिर उससे रूर्ष्ट होकर उस समय के सऊदी राजा से जिसका नाम भी अब्दुल अज़ीज़ था उसके द्वारा मक्का पर आक्रमण करा कर शरीफ़ को क़बरस (Cyprus) द्वीप में ले जाकर नज़रबन्द कर दिया और हिजाज़ पर भी आले सऊद का प्रभुत्व स्थापित करा दिया। अब तक सऊदी सम्राटों की राजधानी नज्द में है मगर वह मक्का व मदीना सहित समस्त हिज़ाज़ के सम्राट हैं।

पहला अध्याय

मुहम्मद ईब्ने अब्दुल वहाब के विचार अल्लाह के बारे में

इस बात से सब ही परिचित हैं कि वहाबी अधिकतर अपने धर्मगुरूओं की बातों में आकर खरी 'तौहीद' के मानने का दावा करने वाले हैं और अपने को छोड़ सब मुसलमानों को मुश्रिक समझते हैं। मगर जब खुद इब्ने अब्दुल वहाब की किताबों को देखा जाए तो यह पता चलता है कि यह आदमी अल्लाह के बारे में अपने पेशवा इब्ने तैयमिया ही के विचारों में आस्था रखता है जिससे अल्लाह की शान व प्रभुता घायल होती है और उसका एक होना जो सच्ची तौहीद है समाप्त होती है। वह इस प्रकार कि कुरआन मजीद की वे आयतें जिनके कुछ शब्दों से शरीर का अर्थ पैदा होता हैं जैसे कि "यदाहु मब्सूतनान" जिसका अर्थ हुआ कि "उसके दोनों हाथ खुले हुए है" और "अलल अर्श शिस्तवा" जिसका अर्थ हुआ कि वह अर्श पर सीधा होकर बैठा है। इनमें सत्य उलमा का यह मानना है कि उनका यह अर्थ अल्लाह की शान के खिलाफ़ है और अक़्ल में भी नहीं आता। अतः उनका ऐसा अर्थ समझना चाहिए जिसका अरब के मुहावरों में स्थान भी हो और वह अल्लाह की शान के खिलाफ़ भी ना हों। जैसे "यद" का अर्थ प्रभुता और "अस्तवा" का अर्थ शक्ति मगर इब्ने तैयमिया और उनके माननेवाले जिनके गुरू अब अंत में शैख ईब्ने अब्दुल वहाब हुए, इन सब शब्दों को उनके ऊपरी अर्थों में मानते हैं और इनमें से किसी में भी बदलाव के खिलाफ़ हैं। इस प्रकार उनका विचार यह है कि

वह वास्तव में अर्श (आसन) पर बैठा है उसके हाथ हैं, पैर हैं, पहलू है, आँखें हैं, चेहरा है, ज़बान है, जान है और यह सब चीजें सच में हैं। वह आवाज़ के साथ बात करता है और चढ़ता उतरता हँसता रोता है।

यह सब उसके साकार होने की बात है जिसके कुफ़्र होने पर सब मुसलमान सहमत हैं मगर वहाबियों के उलमा की किताबें इन बातों से भरी पड़ी हैं। अतः स्वयं इब्ने अब्दुल वहाब की किताब है "अल तौहीदुल लज़ी हुव हक़्क़ुललाहि अलल अबीद" इसमें इस आयत के बारे में लिखा है कि "हत्ता इज़ा फ़ुज़्ज़ि–अ अन् क़ूलूबिहिम क़ालू माज़ा क़ा–ल रब्बुकुम क़ालुल् हक–क़ व हुवल अलीयुलकबीर् (सूरा सबा 34 आयत 23) लिखा हैः "बीसवीं बात इसमें गुण (अर्थात ज़बान, आवाज़ व शब्दों द्वारा बोलने) का सबूत है। फ़िरका अशअरी (मुसलमानों का एक बहुत बड़ा गिरोह) जो तातील (अर्थात् इस प्रकार की बातों को नहीं मानता) का माननेवाला है, उनके खिलाफ़ है।"

इस संदर्भ में व्याख्या कर्ता ने एक फुटनोट में लिखा है कि "यह अशअरी गिरोह अबुल हसन अशअरी से सम्बन्ध रखते हैं और इस गिरोह ने अधिकतर इन बातों का खण्डन किया है जैसे अल्लाह का ऊँचा होना और अपनी सारी बनाई हुई चीजों से अलग होकर अर्श पर बैठना और उसका प्यार करना अपने भक्तों से, और उसकी दया उन पर, और उसका सहमत होना उनसे और उसका क्रोध आदि यह खण्डन करना है उनका जो चीजें रसूलल्लाह[स] और उनके असहाब (सहाबियों) और दूसरे नेक लोगों से पता चली हैं।"

इसके बाद किताब की समाप्ति पर एक भाग है इस मतलब पर उन हदीसों पर जिनसे उनके गिरोह की सत्यता नज़र आती है। अतः लिखा है कि "यह भाग उन हदीसों में है जो अल्लाह के इस बयान के बारे में है कि उन्होंने अल्लाह की असली शान को नहीं समझा है और सम्पूर्ण धरती प्रलय के दिन उसकी मुठ्ठी में होगी।"

इब्ने मसऊद की रिवायत है कि एक यहूदी विद्वान रसूलल्लाह[स] के पास आया और कहा कि "ऐ मुहम्मद[स] हम अपनी किताबों में ऐसा पाते है कि अल्लाह सब आसमानों को एक अंगुली में लेगा और धरतियों को एक अंगुली में और पेड़ पौधों को एक अंगुली में और जल को एक अंगुली में और धरती को एक अंगुली में और बाकी सब को एक अंगुली में और उन सब को लेकर कहेगा कि मैं सच्चा बादशाह हूँ।"

इस पर पैगम्बर[स] हँसने लगे इस प्रकार कि दाढ़ें तक आपकी दिखाई देने लगीं। इस यहूदी की बात की सत्यता में आपने यह आयत पढ़ी उन्होंने अल्लाह की शान को नहीं पहचाना जो उसका हक़ है और क़यामत के दिन पूरी ज़मीन अल्लाह के हाथों पर होगी। (सूरा ज़ुमर आयत 67 समाप्ति तक)।

मुस्लिम की एक रिवायत में है कि पहाड़ और पौधे एक अंगुली में, फिर वह इन सबको हिला कर कहेगा मैं बादशाह हूँ, मैं अल्लाह हूँ। बूखारी की एक रिवायत में है कि आसमानों को एक अंगुली पर जल और धरतियों को एक अंगुली पर और सब चीजों को एक अंगुली पर। इसे दोनों (बुखारी, मुस्लिम) ने लिखा है और मुस्लिम की रिवायत इब्ने उमर से यह है कि अल्लाह आसमानों को प्रलय के दिन लपेट देगा–फिर उन्हें अपने बायें हाथ में लेगा। फिर वही कहेगा कि मैं बादशाह हूँ। कहाँ हैं बाग़ी लोग? कहाँ है अपनी बड़ाई दिखाने वाले? और इब्ने अब्बास से रिवायत है कि सातों आसमान और सातों धरतियाँ अल्लाह की हथेली पर ऐसी होंगी जैसे तुम में से किसी के हाथ में राई का दाना, और इब्ने जरीर का बयान है कि मुझसे युनुस बिन वहब ने बयान किया वह कहते हैं कि अबू ज़ैद ने कहा कि मुझसे मेरे पिता ने कहा कि "रसूल अल्लाह[स] ने फ़रमाया कि सातों आसमान

कुर्सी में बस ऐसे है जैसे सात दिरहम (चाँदी के सिक्के) किसी ढाल में और अबू ज़ैद ने यह भी कहा कि मैंने पैग़म्बर[स] को यह भी कहते हुए सुना कि कुर्सी अर्श के अन्दर ऐसी है जैसे लोहे का एक छल्ला एक बहुत बड़े जंगल के पीछे लुढ़क रहा हो। और इब्ने मसऊद से रिवायत है कि दुनिया के आसमान आसैर उससे मिले हुए आसमान के बीच पाँच सौ वर्ष की दूरी है। इस तरह हर आसमान की दूसरे आसमान से पाँच सौ वर्ष की दूरी है और फिर सातों आसमान और कुर्सी के बीच पाँच सौ वर्ष की दूरी है और फिर कुर्सी और पानी के बीच पाँच सौ वर्ष की दूरी है और अर्श पानी के ऊपर है और अल्लाह अर्श पर है फिर भी तुम्हारे कार्यो में से कुछ भी उससे छिपा हुआ नहीं रहता। इसकी इब्ने महदी ने रिवायत की है जमाद बिन मुसैलमा से उन्होंने आसिम से, उन्होंने ज़र से, उन्होंने अब्दुल्लाह बिन मसऊद से और उसी से मिलती जुलती रिवायत की हैं, मसऊदी ने आसिम से उन्होंने अबूवाएल से उन्होंने अब्दुल्लाह से। हाफ़िज़ ज़हबी ने कहा है कि यह हदीस कई प्रकार से पहुँची है और अब्बास बिन अब्दुल मुत्तालिब (रज़ी अल्लाहो अनहो) से रिवायत है कि रसूलल्लाह[स] ने कहा कि "तुम जानते हो कि आकाश और धरती के बीच कितनी दूरी है? लोगों ने कहा कि अल्लाह और रसूल[स] अधिक जानते हैं। कहा कि पाँच सौ वर्ष की और हर आकाश की दूसरे आकाश से पाँच सौ वर्ष की दूरी है और हर आकाश की लम्बाई पाँच सौ वर्ष की दूरी के बराबर है और सातों आकाशों और अर्श के बीच एक समुद्र है और उसके नीचे और सतह के बीच की दूरी वैसी ही है जैसे आकाश और धरती के बीच और अल्लाह तआला उसके ऊपर है और फिर भी उस पर आदमियों की कोई बात छिपी हुई नहीं है। इसे अबूदाऊद ने लिखा है और इसमें कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं:

पहले इस आयत की तफ़सीर कि "धरती सब उसकी मुठ्ठी में होगी प्रलय (क़यामत) के दिन।"

दूसरे यह कि यह और इस प्रकार की जानकारियाँ यहूदियों के यहाँ भी थीं जो हज़रत के समय में भी थे न उन्होंने उन्हें गलत समझा और न ही कुछ अर्थ निकाले।

तीसरे यह कि जब उस यहूदी आलिम ने पैग़म्बर के सामने इसका वर्णन किया तो आपने उसकी बात को सत्य बतलाया और उसकी बात की सत्यता में कुरआन की आयत उतरी।

चौथे यहूदी आलिम के इस बड़े इल्म को बताने पर पैग़म्बरे[स] खुदा का हँसना।

पाँचवा इस बात का साफ होना कि उसके दोनों हाथ हैं और आकाश दायें हाथ में होगा और ध ारती बायें हाथ में।

महमूद शंकरी आलूसी जो स्वयं वहाबी मत के थे "तारीखे नज्द" में नज्द वालों के धर्म और उनके विचार व कार्यो के बारे में लिखते हैं कि वह गुण अर्थात् हाथ पाँव मुंह आदि वाली आयतों और हदीसों को उनके ऊपरी अर्थ पर लेते हैं और उसके अर्थ को अल्लाह को सौपते हैं। अगर वह इस अर्थ को अल्लाह को सौंपते तो फिर इसके ऊपरी अर्थ को रखने का फैसला न करते।

ग़ौर करने के बाद हर सूझबूझ वाला महसूस कर सकता है कि इन शब्दों के ऊपरी अर्थ को मानना इस्लामी शिक्षा के खिलाफ़ है क्योंकि इससे लगता है कि अल्लाह शरीर रखता है और उसके लिए शरीर को न मानने पर सभी मुसलमान एक राय रखते हैं। क्योंकि यह तौहीद के नियम के खिलाफ़ है। खुदा वालों के प्रमुख हज़रत अली[अ] नहजुल बलाग़ा के पहले ही खुत्बे में कहते हैं कि:

"तौहीद का पूरा होना यह है कि उसकी ज़ात से गुणों का इन्कार किया जाए इसलिए कि गुण और गुणवाला दो अलग चीजें हैं। तो जिसने उसके गुण माने उसने उसे एक से ज़्यादा मान लिया और जिसने उसे एक से ज़्यादा माना उसने उसके अनेक भाग मान लिए।"

अगर अल्लाह के लिए भाग मान लिए जाएं तो

यह भाग सदैव से होंगे या फिर बाद में तैयार हुए होंगे। अगर बाद में बना माना जाए तो फिर अल्लाह भी बाद में बना माना जाएगा। क्योंकि बाद में बनी चीज़ों से बनी चीज़ बाद मे बनी जाएगी और सदैव से मानें तो फिर अल्लाह के साथ सदैव से होने में दूसरे भी मिल जाएगे जो शिर्क है और फिर इसके अलावा अल्लाह का जरूरत का होना याने उसमें किसी बात की कमी का होना साबित होगा।

रह गई वो आयतें और हदीसें जिनमें इस गलत विचार को सही बताया गया है तो हर भाषा में और अरबी में तो एक–एक
शब्द के कई–कई अर्थ होते हैं। इसलिए हर शब्द का वह अर्थ लिया जाए जो कुरान व हदीस और अक़्ल से सही हो जैसे "इस्तवा" शब्द का ऊपरी अर्थ सीधे बैठने का है मगर यहाँ मौक़े के हिसाब से इसका सही अर्थ प्रभुत्व के साथ सदैव रहना है जो बिल्कुल मुहावरे के नियम के मुताबिक़ है और खुदा की शान वैभव के अनुरुप है। जिसकी तरह के मुहावरे अरबी भाषा में बहुत हैं।

वह यहूदी आलिम वाली रवायत जो बयान की गई है वास्तव में इस विचार के ग़लत होने की दलील है। उस यहूदी की बात पर रसूल[स] का हँसने के साथ यह वाक्य कि उस यहूदी की बात के सत्यापन में यह न रसूल[स] का कथन है न काम जिसे हदीस का अंश समझा जाय बल्कि इस रिवायत के बयान करने वाले का विचार उस यहूदी की ना समझी की दलील है। बुद्धिमत्ता यह है कि आप[स] उस यहूदी की बेवकूफी पर इतने ज़ोर से हँसे और उसकी काट में आपने आयत इसलिए पढ़ी ताकि बताएं कि लोगों ने अल्लाह की सही शान को नहीं पहचाना।

सारी सृष्टि प्रलय/कयामत के दिन उसके पूरे कन्ट्रोल में होगी, न यह कि एक एक चीज़ को अपनी एक एक अंगुली पर लेकर उसे घुमाने का करतब दिखाये।

इन सब विचारों को इब्ने अब्दुल वहाब ने अपने गुरू अबुल अब्बास अहमद इब्ने तैमिया हरीफी (मृ. 828 हि0) से लिया है जिन्होंने सबसे पहले इन बातों पर ज़ोर दिया ओर इस बारे में पूरे–पूरे पुस्तिकाएँ रिसाले लिखे जैसे 'अकीद–ए–हमविय्या' और वासितिय्या आदि और फिर उनके शागिर्द इब्ने क़य्यूम आदि उन्हीं के पैरों पर चले। इस्लामी उलमा ने उनके कुफ़्र का फ़तवा दिया और पैर रख कर कुछ ने उनकी हत्या जायज़ होने का हुक्म दिया फिर भी वो एक लम्बी अवधि तक क़ैद में रहे।

इस स्थान पर यह आवश्यक है कि वहाबी विचारों के जनक इब्ने तैयमिया के बारे में इस्लामी उलमा के विचार लिख दिए जाएं ताकि मालूम हो कि जब पेशवा की यह हालत है तो मानने वालों की क्या हालत होगी।

अल्लामा इब्ने हजर मक्की ने अपनी किताब "जौहरु मुनज़्ज़मा फ़ीज़ियारते क़ब्रिन्नबी इल मुकर्रम" में लिखा है कि: "इब्ने तैयमिया की ग़लती ऐसी है जिसका इलाज नहीं हो सकता और ऐसी मुसीबत है जो समाप्त होने वाली नहीं है। इस व्यक्ति ने अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं के तहत इजतेहाद का नारा लगाया और दीन के पेशवाओं की मुख़ालिफ़त की यहाँ तक कि खुलफाए राशिदीन पर घटिया ढंग की आपत्तियाँ कीं। इसके अतिरिक्त अल्लाहतआला की शान में भी गुस्ताख़ियाँ की और मिम्बर के ऊपर से जनता के सामने साफ़–साफ़ अल्लाह के जिस्म होने और किसी एक दिशा में होने का एलान किया और जो इनका इनकार करे उसे गुमराह (पठभ्रष्ट) बताया। यहाँ तक कि सभी उलमा ने एकमत होकर बादशाह को उसके क़त्ल या क़ैद करने पर मजबूर किया, अतः उसने उसे मरते दम तक क़ैद रखा। इसके बाद यह आग ज़रा बुझी सी और अंधेरे छँट गये मगर इनके मानने वाले कभी न कभी पैदा होते रहे लेकिन ये लोग हमेशा ज़लील और अपमानित और खुदा के प्रकोप में घिरे रहे।

उन्होंने अपनी दूसरी किताब "अशरफुल वसाइल इला फ़हमिश्शमाईल" में लिखा हैः "अम्मामे (पगडी)को दोनो कान्धों के बीच लटकाने के बारे में इब्ने कामिल ने एक अजीब बात कही हैऔर वह यह है कि जब आप[स॰] ने अपने पालन हार को अपना हाथ उनके कान्धों के बीच रखे हुए देखा तो उस जगह को उत्कृष्टता दी। इराकी ने कहा कि हमें इसका कोई मूल नहीं मिला। मैं कहता हूँ कि यह दोनों (इब्ने तैमिया इब्ने कैयिम) के दूसरे विचारों की तरह हैं जो उनकी उस धारणा पर आधारित है जिसके साबित करने में बहुत लम्बी बात से काम लिया है और अहले सुन्नत पर बहुत बुरा भला कहा है कि वे इसे नहीं मानते और वह अल्लाह के लिए दिशा और शरीर का प्रस्ताव करना है। (जो उन अन्यायियों के विचारों में पडे हैं।) और उन के यहाँ इतनी ख़राब और बदएतिक़ादी (दुर्विश्वास) की बातें हैं जिनसे कानों को तकलीफ़ होती है। यह सब ग़लत, झूठ और गुमराही और झूटे आरोपी की बातें हैं, अल्लाह उनका बुरा करे और जो उन की बातों को माने उनका बुरा करे लेकिन इमाम अहमद बिन हम्बल और उनके पन्थ दूसरे बुजुर्ग इस बुराई के दाग़ से दूर हैंऔर क्यों कर एसा न हो कि यह बहुत सों के विचार में कुफ्र है।"

हमारे लखनऊ के मौलाना अब्दुल हलीम फ़िरंगी महली अपनी किताब "हिल्लुल मआक़िद हाशियए शरहे अक़ाएद" में लिखते हैं किः तक़ीउद्दीन इब्ने तैमिया हम्बली आदमी था मगर हद से आगे बढ़ गया था और ऐसी बातों को साबित करने पर उतारु हुआ जो अल्लाह की अज़मत, महानता व शान के ख़िलाफ़ हैं। उसने अल्लाह के लिए दिशा और शरीर को माना और हज़रत मोहम्मद[स] के लिए कहा कि वह माल से मुहब्बत रखते थे और हज़रत अली[अ॰] को कहा कि उनका ईमान ठीक नहीं था इसलिए कि बचपन में ईमान लाए थे। पैग़म्बर के अहलेबैत के लिए भी ऐसी बातें कहीं जो एक मोमिन (ईमान वाला) अपनी ज़बान पर नहीं ला सकता जब कि सही हदीसें उनकी सराहना में सहीह किताबों में आयी है। इसीलिए उलमा की एक बैठक में जिसमें क़ाज़ीउल कुज़ात (महा धर्म न्यायधीश) ज़ैनुद्दीन मालिकी भी थे इब्ने तैयमिया को हाज़िर किया गया और लम्बी बात चीत के बाद इब्ने तैमियाको क़ैद करने का हुक्म दिया गया। यह 705 हिजरी की घटना है। फिर दमिश्क आदि में ऐलान हुआ कि जो भी इब्ने तैमिया के विचारों को मानता हो उसकी जान व माल दूसरों पर हलाल है। इसका बयान ''मिर्अतुज़िनान शाफई'' में है। फिर उसने 707 हिजरी में तौबा की और कैद से छूटा और यह वादा भी किया कि मैं "अशअरी" विचारधारा का पाबंद (प्रतिबद्ध) रहूँगा। उसके बाद फिर इसने अपने वचन को तोड़ा और फिर क़ैद हुआ फिर तौबा की और शाम में रहा और बहुत सी घटनाएँ घटी जो इतिहास की किताबों में मौजूद हैं।"

इब्ने तैमिया के बारे में सारे उलमा का यही मत है कि चूँकि उसने खुदा को जिस्म समझा इसलिए स्थान का भी इक़रार किया और कहा कि अर्श ही उसका स्थान/आसन है और चूँकि खुदा की ज़ात हमेशा से है और बाक़ी चीज़ें समाप्त होने वाली हैं इसलिए उसने कहा कि अर्श तो हमेशा से है मगर उसकी हालतें बदलती रहती हैं।

इब्ने हजर मक्की ने 'दुररुकामिना' भाग.1 में और ज़हबी ने अपने इतिहास में उसके कथनों और हालात का बयान किया है। यह बयान तो बीच में अधीनतयः आ गया। मूल मतलब यह है कि इब्ने तैमिया ने खुदा की शारिक्ता को अपनाया अतः कहा कि उसके लिए स्थान है इस लिए कि हर शरीर के लिए स्थान ज़रुरी है। और क्यों कि कुरान में है कि वह अर्श पर सीधा बैठा है कि अर्श ही उसका स्थान/ठिकाना है। और फिर खुदा सदा से है। (अनादी है) और विश्व के सार भाग

मिटने वाले (घाटित) है इसलिए कीना पड़ा कि अर्श अनादि लेकिन उसकी अनन्त चीज़े एक के बाद एक अस्तित्व में आती रहती है तो स्थान के होने के गुण में खुदा कदीम है परन्तु स्थान के निर्धारण में घटित है।

याफई की मिरातुलजिलान में इब्ने तैमिया के बवाल/आपदा के बारे में है कि मिस्र में जो उन पर आरोप लगा ये है कि वो कहते है कि खुदा सचमुच अर्श पर बैठा है और वो वर्णों और आवाज़ से बोलता है और इसी के बाद दमिश्क आदि से एलान किया गया किजो इब्ने तैमिया के विश्वास पर हो उसका जान माल (ले लेना) समुचित है।

अबुलफ़िदा ने अपने इतिहास में 705हि० की घटनाओं में लिखा कि तक़ीउद्दीन अहमद इब्ने तैमिया को दमिश्क से मिस्र बुलाया गया और तय हुआ कि वाद विवाद के बाद तैमिया को उसके बुरे अक़ीदों के कारण जेल में डाला दिया जाय। इसलिए कि वह खुदा के लिए जिस्म होने को मानता है।

इसी प्रकार कुछ इश्तेहार (विज्ञापन) भी बादशाह की ओर से प्रकाशित करवाए गये जिनका निचोड़ यह था कि इस अभागे व्यक्ति इब्ने तैमिया ने अपनी लेखनी की ज़बान बढ़ा रखी है और खुदा के गुणों के मसलों में विवाद खड़ा कर रखा है और अपनी बातों में एसी गलत व्याख्या की ऐसी बातें करता है जिन पर सहाबियों, ताबेईन ने चुप्पी साधी थी और पिठले नेक सदाचारियों के लिए अमान्य थीं और वह विचार प्रकट किये जो कि इस्लाम के अगुवाओं नें गलत बताया है। और जिनके विपक्ष में इस्लाम के सभी उलमा एक मत है और देश के कोनो में एसे फ़तवों का प्रसार प्रकाशन हो रहा है जिनसे जन साधारण बहेक रहे है। और इस बारे में उसने मिस्र के उलमा और शाम व मिस्र के फ़क़ीहों (घर्म विधि शास्त्रियों) का विरोध किया है। हम तक यह समाचार पहुँचे है और ज्ञात हुआ है कि एक गुट उसका अनुयायी होगया है ये लोग खुदा के बारे में जिस्म और आवाज़ रखने का विश्वास रखते हैं इसीलिए हम उनके ख़िलाफ़ खड़े होने को मजबूर हुए। यह ज्ञात Charector बहुत लम्बा है जिसके कुछ वाक्यों का आश्य लिखा गया।

इन सबसे मालूम हुआ कि यदि कोई खुदा के लिए जिस्म रखने का विचार रखे तो ऐसा व्यक्ति सभी उलमाए इस्लाम के अनुसार काफ़िर है। अब इससे इब्ने अब्दुल वहाब और उनके अनुयायियों के बारे में आसानी से समझा जा सकता है कि वे क्या हैं।

जो कुछ यहाँ पहले हमने दर्ज किया वह अहलेसुन्नत उलमा के विचार थे, शियों के विचार शरहे लुमआ, 'रियाजुल मसाइल', और जवाहिरूल कलाम आदि किताबों में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार इन लोगों के काफ़िर होने पर पूरी उम्मत (मुस्लिम समुदाय) का एकमत होना साबित हो जाता है।

दूसरा अध्याय

वहाबियों के विचार नबी-ए-करीम के बारे में।

इब्ने अब्दुल वहाब और उनके मानने वाले यह विचार रखते हैं कि रसूले खुदा[स] दुनिया से चले जाने के बाद अपनी क़ब्र में और लोगों की तरह हो गए हैं कि न सुनते हैं और जवाब न दे सकते हैं। ना आप[स] को इतना अधिकार है कि अपनी इच्छा से पूरब पश्चिम में जहाँ चाहें चले जाएं। इसके अलावा आपकी कब्र शरीफ की ज़ियारत के लिए यात्रा करना उनके विचार में हराम है और आप[स] के माध्यम (वसीले) से दुआ मांगना और आपकी क़ब्र के पास दुआ मांगना भी उनके विचारों में जायज़ (मान्य) नहीं है और या रसूल अल्लाह कह कर पुकारना शिर्क है। जो आपके दुनिया से चले जाने के बाद आपसे मुख़ातिब हो बुला के कोई चीज मागें वह भी शिर्क है।

उसको कत्ल करना हलाल (ठीक) है इसी प्रकार उसका माल लूटना भी हलाल है। इस को सही बताने के लिए वह आयतों व हदीसों से दावा करते हैं और उन्हें सबूत बनाते हैं जिनसे वास्तव में इस का प्रमाण नहीं बनते। और सब मुसलमान एकमत हैं कि हज़रत[स०] मृत्यु के बाद भी जीवित हैं न ऐसा जीवन जिसका वर्णन शहीदों के लिए कुरान से साबित है बल्कि इससे भी कई श्रेणी ज्यादा भरपूर जीवन।

यह विचार कि हज़रत[स] की क़ब्र शरीफ़ की ज़ियारत के लिए यात्रा करना मना है इसकी बुनियाद एक हदीस पर है जो अहले सुन्नत के यहाँ आई है कि हज़रत[स] ने फ़रमाया कि केवल तीन मस्जिदों के अलावा किसी जगह यात्रा करके जाना हलाल नहीं है। इसे जो अपने मतलब के लिए दलील बनाकर सामने लाया जाता ग़लत है, इसलिए कि जो थोड़ा भी अरबी भाषा का ज्ञान रखता है वह समझ सकता है इस हदीस का मतलब यह है कि मस्जिदों में केवल तीन मस्जिदें हैं कि जिनके लिए विषेशकर यात्रा करना चाहिए, क्यों कि खुली बात कि जो वस्तु 'नहीं' से अलग की जाती है वह उसी प्रकार की होना चाहिए जिससे अलग की जाती है (यहाँ प्रकार 'मस्जिद' है अर्थात उन हदीस के अनुसार तीन उन तीन मस्जिदों को छोड़ कर कहीं किसी और मस्जिद की खास कर यात्रा नहीं करना चाहिए) जैसे कोई कहे कि मैंने अपनी पूरी आयु में बस वह मस्जिद देखी है उसके सिवा कोई नहीं तो हर व्यक्ति यह ही समझेगा कि कोई और मस्जिद नहीं देखी यह नहीं कि कोई और दूसरा भवन व दूसरी चीज़ नहीं देखी।

इसी प्रकार इसके सिवा तीन मस्जिदों के और किसी के लिए यात्रा न की जाए यह केवल मस्जिदों के लिए है इसलिए यह अर्थ निकालना ठीक नहीं कि रसूल[स] की पाक कब्र के लिए यात्रा करना ठीक नहीं है। वरना फिर एक नगर से दूसरे नगर व्यापार आदि के लिए भी यात्रा ठीक नहीं होना चाहिए जिसका गलत होना साफ़ है कई बार स्वयं रसूल[स] ने व्यापार के लिए शाम (सीरिया) की यात्रा की और इसका सबूत मिलता है इमाम अहमद बिन हम्बल की रिवायत से जिसका अर्थ यह है कि "किसी मस्जिद की तरफ जहाँ अल्लाह का ज़िक्र (याद) होता है यात्रा करके जाना ठीक नहीं होगा केवल तीन मस्जिदों को छोड़ के। इसे सय्यद मुस्तफ़ा नूरूद्दीन हुसैनी ने अपनी किताब "खुलासातुल मिक़ाल फीशद्दिररिजाल" में लिखा है और सत्य यह है कि हदीस एक दूसरे की व्याख्या करती हैं।

आम हुक्म का पता शर्त वाले हुक्म से चलता है। समस्त मुसलमान और हर काल के उलमा रसूल[स] के रौज़े (क़ब्र/समाधि) की ज़ियारत के लिए यात्रा करते रहे हैं और किसी ने कभी इस पर कोई आपत्ति नहीं की। इससे सब मुसलमानों का इजमा (एक राय होना) साबित होता है और जिन लोगों ने बाद में इस के विरोध का रास्ता अपनाया वह गिरोह से निकल गए और एकमत रास्ते से भटक गए।

बहुत सी हदीसों से भी ज़ियारत के लिए यात्रा का सबूत मिलता है जैसा कि अली बिन बुरहानुद्दीन शाफ़ई की किताब "इन्सानुलउयून" में है कि

"जब जनाबे रसूले ख़ुदा[स] की वफ़ात हो गई तो बिलाल[अ] शाम की तरफ चले गए और कहा कि अब रसूल[स] के बाद मदीने की सूरत नहीं देखूंगा। वर्षो तक वहाँ रहे मगर एक रात सपने में रसूल[स] को देखा कि फरमाते हैं

ऐ बिलाल तुमने हमारा पड़ोस छोड़ दिया और शाम में रहने लगे तो क्या अब हमारी ज़ियारत (दर्शन) के लिए भी नहीं आते?

बस जब निद्रा भंग हुई तो उन्होंने यात्रा की तैयारी की और मदीना आए और क़ब्र की ज़ियारत के लिए उपस्थिति हुए।"

जारी ....

चालीस पारों वाला कुरआन

eks§ykuk lS;n eksgEen 'kkfdj udoh lkgc fdCyk

कुरआन में तहरीफ यानी फेरबदल की बहस का सबसे मुख्य भाग ''चालीस'' पारों वाला कुरआन'' है। इसके देखने का सम्मान मुझे पहले 1962 ई० के आसपास मंगलौर ज़िला सहारनपुर में जनाब सैय्यद जव्वार हुसैन साहिब के पास मिला। जिस वक्त मुझे इसके बारे में बताया गया था तो मेरी कल्पना में अपने मौजूदा कुरआन से इस तथाकथित 40 पारों वाले कुर्आन का हजम दूने का था परन्तु जब अपनी आंखों से देखा तो अपनी सोच से बिल्कुल उल्टा पाया।

क्योंकि जो संग्रह मुझे जव्वार साहिब (अब मर्हूम) ने दिखाया वह सिर्फ दो सूरे थे एक ''नुरेन'' दूसरा ''विलायत'' (रमजानुल मुबारक का जमाना था) अच्छी खासी फुर्सत के साथ देखने का मौका मिला। सबसे पहला सवाल हजम को देख के जो मेरे मन में क़ायम हुआ वह यह था कि इस तरह बहुत से बहुत 32 पारे बन सकते हैं। चालीस पारों वाली बात तो फिर गलत की गलत रही फिर दुसरी बात जो उभर के सामने आयी वह यह थी जिसमें कि हमारा मौजूदा कुरआन जिसमें आयतों के इधर–उधर अगड़–पिछड़ जाने वाली तहरीफ के सब क़ाएल हैं। वह खल्त मल्त हो जाने के बावजूद बेरब्त और असंगत नहीं महसूस होता लेकिन यह दो सूरे जिनको निश्चय ही समय के खुर्द–बुर्द से बचा रहना चाहिए था जैसा कि इसके बारे में ''राज़दारी'' की बात की जाती है लेकिन यह सूरे मुझ सरीखे साधारण और अनपढ़ आदमी की नज़र में भी सर्वथा असंगत, बिल्कुल बेरब्त थे।

अब से लगभग 20–25 साल पहले अपनी अनभिज्ञता और लाइल्मी के बावजूद जो आनन्द अपने कुरआन में महसूस होता था, उस आनन्द का इसमें कहीं नाम निशान तक न था। हालांकि विश्वास और अक़ीदे के पक्षपात का तक़ाजा तो यह था कि मैं अहले–बैत(अ०) जिनकी मोहब्बत मेरे जीवन–मरण की एक मात्र पूंजी है की प्रशंसा के एक–एक वाक्य पर झूम–झूम पड़ता परन्तु प्रत्येक वाक्य स्वतः पुकार–पुकार कर कह रहा था कि यह अहले–बैत के चाहने वालों को बदनाम करने और कुरआन को विवादित बना देने के लिए यज़ीदी षड़यन्त्र है। बहरहाल मैंने वह नुसख़ा नागवार टिप्पड़ी के साथ सैय्यद ज़व्वार हुसैन जैनपुरी साहिब को वापस कर दिया।

फिर 1978–79 में कुरआन के नाम से प्रचलित यह संग्रह मैंने ''खुदा बख्श ओरियन्टल लाइब्रेरी'' पटना, बिहार में पाया। जहां मुझ से उसकी '' ज़ियारत'' की बारम्बार ख्वाहिश की गयी। लेकिन पुस्तकालय के कर्णधारों को मेरी इस प्रतिक्रिया पर अचरज हुआ क्योंकि न मैंने अपने व्यवहार के विपरीत वह संग्रह देखने से सख़्ती से इनकार कर दिया चूंकि मैं उस जमाने में (''उस्तुर्लाब'') वेधयन्त्र, पहले जमीन में उच्चता मापने का यन्त्र विशेष पर अपना कुछ निजी काम कर रहा था। इसलिये उन महानुभावों को मेरे इस अप्रत्याशित बर्ताव से काफ़ी तअज्जुब हुआ क्योंकि उन महानुभावों को यक़ीन था कि दूसरे लोगों की तरह मैं भी बड़ी ललक के साथ इसे देखने का शौक ज़ाहिर करूंगा लेकिन मेरे तिरस्कारपूर्ण व्यवहार से वह लोग मुझे आश्चर्य चकित हो के देखने लगे। चुनाचें उनमें सबसे ज़ियादा योग्य और बूढ़े सज्जन जिनके नाम का एक अंश हबीब था मुझसे पूछने लगे।

मैंने उन महानुभाव से निवेदन किया–

"चालीस पारों की रवायत पर तो पुरा विश्वास है लेकिन इस संग्रह को तो जअली समझता हूं। अल्लाह पर लांछन लगाने का जिसने भी यह अपराध किया है, उसका दुस्साहस उससे लेखा जोखा लिये बिना न छोड़ेगा।"

मेरा यह जवाब चूंकि उन सज्जनों की निगाह में पूरी तरह परस्पर विरोधी था। इसलिए वह सब मुझे अजीब अर्थ पूर्ण नज़रों से देखने लगे। मैंने बात को आगे बढ़ाते हुये निवेदन किया–

"जहां तक चालीस पारे वाले कुर्आन का सवाल है मेरी ही तरह खुद आप को भी इक़रार करना पड़ेगा कि अमीरूल मोमिनीन हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) ने जो कुर्आन संकलित किया था वह चालीस पारों।"

मुझे उन बुजुर्ग का नाम याद नहीं रहा जिन्होंने लगभग उछलते हुये फरमाया कि "कि अरे हम 40 पारों का इक़रार करेंगे। मैंने निवेदन किया कि "क्यों नहीं मुझसे ही खुशी–खुशी मानेंगे।" चुनांचे सब सज्जन व्यंग्य पूर्ण हंसी हंस रहे थे।

मैंने सब को सम्बोधित करके सवाल किया, "हमारा मौजूदा कुरआन कितने पारों का है? जिसके जवाब में सभी मुस्करा के फरमाने लगे "कि तीस पारों का"। मैंने जवाब दिया कि जी नहीं! ऐसा नहीं है।" जाहिर है कि इसके जवाब में सब को एक ठहाका लगाना चाहिए था लेकिन सभी मुझे अचरज से देखने लगे जैसे वह मेरे मन को संदिग्ध निगाहों से टटोल रहे हों। मैंने फिर निवेदन किया, "कि यह हमारा कुरआन केवल तीस पारों का नहीं है बल्कि यह सात पारों का भी है और तीस पारों का भी जैसा कि कुरआन की हर प्रति में सात मंजिलें बाकायदा मौजूद हैं। अब आप खुद समझ गये होंगे कि इसकी आवश्यकता क्यों हुई कि कुरआन को तीस पारों का होते हुए सात पारों का बना लिया गया। ज़ाहिर है कि जो लोग इसको एक महीने में खत्म करते थे उनका कुरआन अनिवार्य रूप से तीस हिस्सों और उन्तीस हिस्सों पर समाप्त होता था। इसलिए उसके पाठ को सुव्यवस्थित रखने के लिए कुरआन के तीस पारे बना लिये गये। और जो लोग कुरआन को जुमा से प्रारम्भ करके जुमेरात को समाप्त करते थे और दूसरे जुमे से नया दौर शूरू करते थे यानी एक सप्ताह में कुरआन समाप्त कर लेते थे उनकी सुविधा के लिए कुरआन में सात पारे बना दिये गये। इसी तरह जो लोग चिल्लाकशी करते थे वह अपना यही कुरआन चालीस दिनों में खत्म किया करते थे। इसलिए उनका यही तीस पारों वाला कुर्आन चालीस पारों में तक़सीम हो जाता था, बंट जाता था। बिल्कुल उसी तरह आज भी कुछ लोग साल भर में कुर्आन का एक दौर पूरा करते हैं तो इसी कुर्आन को तीन सौ साठ पारों में बांट लिया करते हैं। बस इसी तरह चूंकि हज़रत अली (अ०) चिल्लाकशी के उन्वान से चालीस दिन में ख़त्म फर्माया करते थे तो अगर बराबर की मात्रा में तिलावत फर्माते रहे होंगे तो कुरआन चाहे–अनचाहे चालीस पारों में बंट गया होगा और इसी आधार पर यह बात फैल गयी होगी कि हज़रत अली (अ०) का कुरआन चीलीस पारों का था।

हम इस बुनियाद पर इस रवायत को और अधिक सहीह मानते हैं कि जब "तौरेत" के अवतरण के सिलसिले में कुरआन बताता है कि अल्लाह पाक महान ने हज़रत मूसा (अ०) को तीस रातों का वअदा करके बुलाया था और फिर इसमें दस रातों की बढ़ोत्तरी कर दी यानी तौरेत जिसे तीस खण्डों में उतरना था वह चालीस खण्डों में अवतरित हुई। हो सकता है कि जैसा कि कुरआन में फरमाया गया है "हमने तुम्हारे पास उसी तरह एक पैग़म्बर भेजा जैसा "फिरऔन" के पास भेजा था।[1] तो अगर इस कुरआनी आयत की रोशनी में यह सम्भावना मानी जाये कि हो सकता है कि कुरआन को भी चालीस

हिस्सों में बांट दिया गया हो तो इसमें अचरज नहीं होना चाहिए। कुरआन में इर्शाद हुआ है–

"और फिर हमने मूसा से तीस रातों का वअदा किया और उनको (दस की बढ़ोत्तरी) से पूरा किया बस पूरा हो गया मूसा के रब का मीक़ात (एक नियत समय या स्थान) चालीस रातों में और कहा मूसा ने अपने भाई हारून से तुम मेरे प्रतिनिध (खलीफा) बन जाओ मेरी जाति में और उनका सुधार करो और फसादियों का अनुसरण न करना।"(2)

इस आयत के भाष्य के क्रम में सभी जानते हैं कि तीस दिन पूरे होते ही सारी जाति सन्देह का शिकार हो गयी और सामरी ने तो मूसा की जाति का कबाड़ा कर दिया और शायद इसी ढ़ंग से अमीरूल मोमिनीन (अ०) ने चालीस की गिनती इख़्तियार की होगी और इस पूरे कुरआन मजीद को चालीस हिस्सों में करके चालीस दिन में पूरा फरमाते होंगे हमें विश्वास है कि अल्लाह के नेक बन्दों में चिल्ले का दस्तूर भी इसी बुनियाद पर जारी हुआ होगा जो आज तक तअवीज में चल रहा है। यह न मानें तो चालीस का दर्शन समझ से एक दम बाहर हो जाये।

मेरे इस संक्षिप्त बयान से उन साहिबान ने जो असर लिया उसके चित्रण के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। बहरहाल यह बात उन लोगों ने मानी और प्रत्येक व्यक्ति मानने पर मजबूर होगा कि चालीस पारों वालों वाली रिवायत का यह मतलब लेना बिल्कुल गलत है कि वर्तमान कुरआन के तीस पारों में दस की ओर वृद्धि कर दिये जाने के बाद चालीस पारों का कुरआन था बल्कि मतलब यही है कि यही हमारे हाथों में मौजूद कुरआन तीस के बजाये चालीस पारों में बांटा हुआ था जिसकी आयतों और सूरों के क्रम में, तरतीब में फर्क था लेकिन वह न तो इस कुरआन से कुछ ज़ियादा था न कुछ कम। यही हमारा विश्वास है और यही वस्तुस्थिति है।

अगर किसी मुसलमान को यह अधिकार है कि वह कुरआन को जब चाहे और जितने दिन में चाहें पूरा करें तो गोया प्रत्येक मुसलमान को यह छूट है कि वह कुरआन के हिस्से अपनी सुविधानुसार बांट ले तो यह छूट हज़रत अमीरूल मोनीन (अ०) के लिये क्यों नहीं! जिनके लिये रसूल (स०) का दिया हुआ यह प्रमाण मौजूद है कि "अली कुरआन के साथ हैं।" तो क्या उन्हें इतना अधिकार नही कि कुरआन को एक चिल्ले में पूरा किया करें। बहरहाल यह थी वह चालीस पारों की अस्ल हक़ीक़त जिसको इतना रंगीन बनाकर पेश करने की कोशिश की गयी है कि दो सूरे रच लिये गये ताकि मुसलमान कुरआन के बारे में भी आपस में मतभेद के शिकार हो जायें मगर अल्लाह का शुक्र है कि अहले–बैत के मानने वाले इस चाल में न आये। रह गयी ग़लत आरोप लगाने की बात तो उसका हाल अल्लाह पर छोड़ देना चाहिए।

1––सूरा 73 आयत 15, 2–सूरा 7 आयत 142

●●●

engsmEesdyqlw l0 v0

नदल हिन्दी

जै़नब की साथी कुलसूम
शह की बहेन अच्छी कुलसूम
अज़्मो हिम्मत की पैकर
हैदर की बेटी कुलसूम
सीरते ज़हरा की सूरत
अहमद की प्यारी कुलसूम
खान–ए–ग़म में रहती है
शाह की दुखियारी कुलसूम
ज़ुल्म को बिस्मिल कर डाला
ऐसा हक़ बोली कुलसूम
फ़िक्रो अमल में बिल्कुल है
माँ सी, नानी सी कुलसूम
दरसे शहादत अब भी 'नदा'
हम को हैं देती कुलसूम

●●●

eq[; lekpkj

vdhnr vkS ,grjke dslkFk fudykvkʼkjw dktqywl

jkt/kkuhy[kuÅ les iqjh fj;klr esa beke gqlSu dh 'kgknr dh ;kn iqjsvdhnr vkS ,grjke dslkFk eukbZ xbZA 'kgj lsydj xkao rd ;k gqlSu dhlnk xqatx;hA ejdtsvtknkjhy[kuÅ les dbZ bykdkaestqywl l[r fgQktrhburtkekr dslkFkfudykA y[kuÅ esvkʼkqjkdk tqywl viusjokf;rhvUnkt+esafoDVksj;kLVsV okdsbeke cMkukftes lkgc lsfudydj dcZykrkydVksjkesalekIr gqvk tqywl esgtkjksadhla[;k esadkysdiM+esa'kfey vtknkj jksrsvkS ekre djrsgq py jgsFkA eksgkuklS;n gemnqy glu vkS dk;nsfeYyr eksgkukdYcstokn vkS eksgkuklQ vCckl les dbZvkyekstqywl esekStwn jgsA tqywl lsdCy eksgkukQjhnqy glu lkgc usetfyl [kkc djrsgq dcZkesanhu dhfgQktr dsfy, beke gqlSu o vkSknsgqlS vkS vlgkc gqlS dh dqckZu;kadk ftØ fd;kA eksgkukQjhnqy glu lkgc usgtjr vyhvlxj vkS beke gqlS dh'kgknr dkftØ fd;krksvtknkj tkjks drkj jksusyxsA etfyl dscn ;k gqlS dhlnkvksadsnjfe;ku tqywl fudykA tqywl viusjokf;rhjkLrsu[[kkl Vfy;kxat] gSnj xat gksrkgqvk ,ojMhpkSjkgslsgksrkgqvk dcZkrkydVksjkesalekIr gqvk tqywl dslkFk'kgj dh rekevUtqeu gk;sekrehuksk[okuhoalhuktuhdj jgh FkhA tqywl es'kkfey dkysdiM+esacPpsvkSrsvkS cqtqxZ Hkhlhuktuhdj jgsFkA dcZkrkydVksjkesrkft;kn¶u djusdkflyflykt kjhjgknsjkr rd vdhnr eUnkaus Tkjh jgkA dcZkrkydVksjkesdkQhla[;k esfgUnqvkS ,gyslqUur gtjkr usHkh rkft;snQu dj dsl;nq 'kgnkv0l0 beke gqlSv0l0 dks[kjkt svdhnr iśk fd;kA ,gyslqUur vkS fgUnqrkft;knkjkausy[kuÅ dseqrfyQ ,ykdkalsrkft;sdcZkrkydVksjkvkS fu'kkr xat okds dcZkeslirqZfd;sA QSckn jksM ij fLFkr cknʼkkg uxj lsvgyslqUur dstfj;sfudkysx;stqywlsvtkesdkQh rknkn esvtknkjkaus'kfey gksdj lhuktuhdhA fu'kkr xat dcZkigqapatqywl esa'kkfey vtknkjkausrkft;kn¶u dj beke gqlS vkS 'kgnk dcZkdksvkjqdkadsutjkusiśk djds[kjkt svdhnr iśk fd;kA **10** egjZe dks igqkus y[kuÅ dsvykog gtjr xat]fu'kkr xat] cknʼkkg uxj esa fudysrkft;sdstqywl esalHkhetkfgc dsykskausf'kjdr dhA

efLtnsvdl+k dhcfUn'kvkyehtaxhtqeZ

fQfyLrhu dsvkyeh ekgjhusdkuw usefLtns vdl+kesequyeku uekft;kadsnk[kysij blj kbZy dh tkfuc lsyxhikcUnhdksvkyehdkuw dsfgl kc lstaxh tqeZcrk;k gSA fQfyLrhuh vkyehdkuw dsekfgj MkDVj fguk bZkusvius,d c;ku esdgkfd efLtnsvdl+kes equyekukadsuekt+vnk djusij ikcUnh blj kbZy dh vkykdkuw vkS cSuy vdokehmly dhljhg [kykQ+ ojthgSA ghx esalu~**1899** bZvkS **1907** esr;sik;scSuy vdokehequkgnkesadjkj fn;kx;kgSA fd fdlhHkhnśk dsetgchedke dksml dsiSjksdkjkadsfy;scUn djuk taxhtjk;e es'kkfey fd;ktk;xkA blhrjg ftusok equkgnsjkjhlu~**1949** bZvkS bl dstjsburtke reke iwVksdkxt+Hkh ekdnnl edke dsfnQk dhl[rhls rydhu djrsgSvkS bu ij cfUn'kdkstaxhtqeZdjkj nsrs gSa bu vkyeh equkgnkavkS dkuhu esaedcwt cSuy ekdnnl ij blj kbZy dklu~**1967** bZdkdCtkHkhlkQ lkQ uktk;t+djkj fn;ktkrkgS bu reke equkgnkadk brykd lg;wnhfj;klr ij Hkhgksk gSvkS vxj bu ij vey nj vken esnkfuLrkykijokghvkS bu dhf[kykQ+ ojthdksn§kktk;srksblj kbZy ckj ckj taxhtjkbZe dj pqdk gSA MkDVj fguk bZkuscSuy ekdnnl esafugÙks fQfyLrhuhdsf[kykQ lg;whQkS dhrkdr dsbLrseky vkS efLtnsvdl+kesequyeku uekft;kadsnk[kysij ikcUnh dsckjsesvkyeh cjknjh dh [kkeks'kh ij ecuh ikfylh dksHkhdMh+rudhn dkfu'kkukcuk;kA mUgksusdgk fd vkyehcjknjhdh[kkeks'khlg;whfj;klr dksfQfyLrhfu;ksa dsf[kykQ+etkfye tkjhj[kusvkS cSuy vdokehequkgnkadhlaxhu f[kykQ ojthdh gkSlykvQ+tkbZdj jghgSA MkDVj fguk bZkuscSuy equnnl vkS efLtnsvdlkij blj kbZy dsukt k;t+dctsdhdbZnqjhfelky Hkhiśk dh

vkSj dgk fd lykerh dkSfly us lu~**1973** bZ esa vkSj bl ls igys lu~**1967** bZ esa nks djkjnkn eutwj dh A djkjnkn **242** lu~**1967** bZ esa eutwj dh x;h vkSj djkjnkn **338** lu~**1973** bZ esa ikl dh x;hA bu nksuksa djkjnknksa esa fQfyfLrhu ds edcwtk cSrqy eqdn~nl] efLtn vdlk vkSj exfjch dqnl ij blj kbZyh dCts dks ukt k;t djkj fn;k x;k gSA bu ,ykdksa ij blj kbZy dks ,d xfl c fj;klr ekuk x;k gSA bu ds vykok bu lqykuh gqdwd ds cSrqy vdokeh bnkjksa dh tkfuc ls dbZ nqljh djkjnkns Hkh eutwj dj j[kh gSa ftu esa **1968** bZ tkjh djng djkjnkn uEcj **252] 1969** bZ esa djkjnkn **271** bZ blh lky **453] 1979** bZ esa **465]476]487]1980** bZ esa lu~**1996** bZ esa tkjh djng djkjnknksa esa Hkh lu~**1967** dh tax esa dCts esa x;s ,ykdksa dks ekSukt s vkSj edcwtk djkj fn;k x;k gSA bu djkjnknksa esa ;s okt g fd;k x;k gS fd blj kbZy edcwtk vkSj ekSukt s ,ykdksa esa ,d rjQk rkSj ij dksbZ f[kykQs dkuuw dne mBkus dk vgy ugha gSA vxj og ,slk djs rks bls vkyeh dkuuw dh [kqyh f[kykQ ojth le>k tk,xkA

uekft;ksa ij dMh 'krksZa ds rgr efLtns vdlk [kksyus dk blj kbZyh QSlyk

dkfct + blj kbZyh gqdwdke us efLtns vdlk dks eqlyeku uekft;ksa ds fy;s cUn j[kus ds ckn tqek dks vkjtkh rkSj ij [kksyus dk ,ylku fd;k gS exj uekft;ksa ds fy;s 'kjk;r Hkh vk;n dh tk jgh gSA blj kbZyh fefM;k ds eqrkfcd lg;wuh iqfyl us vdlk dks fQfyLrhfu;ksa ds fy;s tqek ds jkst + [kksyus dk QSlyk fd;k gSA [+ky jgs fd cqk vkSj tqekjkr dh njfe;kuh jkr cSrqy eqdn~nl esa ,d lj djng ;gwnh burgk ilUn etgch jguqek ;gwnk xfyx ij dkrykuk geys ds ckn lg;wuh iqfyl us fdcyk&,& vOoy esa eqlyeku uekft;ksa ds nkf[kys ij x`g eq ¸;uk eqnr ds fy;s jksd yxk nhA blj kbZy ds bl x`g dkuwuh vdnke ds f[kykQ fQfyLrhu les iwjh bLykeh vkSj vjc nqfu;k esa l[r xe o xqLls dh QSyk ikbZ tk jgh gSA ejdts bRrsgkn vkSj rs fQfyLrhu ds tfj, ds ekSrkfcd efLtns vdlk dks tqek rkSj ij [kksyus ds ,ykus ds ckotwn cSrqy eqdn~nl esa dkfct + lg;wuh QkSt vkSj iqfyl dh cMh la[;k x'r dj jgh gSA vkSj 'kgj esa vc Hkh x`g ,ykfu;k dj fQ dh dSfQ;r gSA 'kgj dh reke vge bekjrksa vkSj lMdksa ij blj kbZyh QkSt vkSj iqfyl ds nLrs rSukr gSA nqljh tkfuc fQfyLrhuh rutheksa dh rjQ ls ,grstkt dk ,ylku fd;k x;k gSA efLtns vdlk ds fnQkds fy, lj xje bnkjksa dh rjQ ls fQfyLrhuh vokel s vihy dh x;h gS fd og tqek dh uekt + esa T;knk ls T;knk la[;k esa fdcyk&,&vOoy esa eqlyeku uekft;ksa ds nkf[kys ij ikcUnh vk;n djus ds fy;s x`g dkuwuh gFkdaMksa dks ukdke cukus esa rvkmu djsaA

gekl us edcwtk cSrqy eqdn~nl esa fQfyLrhuh ukStokuksa dks frt + gks tkus dh lg;wuh QkSt ds gkFkksa tkyseku 'kgknr dh 'knhn eksLer djrs gq, 'kgjh ds vgys [kkuk ls gennnhZ dk btgkj fd;kA c;ku esa dgk x;k fd 'kgjh gks tkus fdcyk&,& vOoy ds fnQk ds fy, tku nh gS vkSj iwjh dkSe dks ,sls liwrksa ij QfS gSA c;ku esa efLtns vdlk esa fQfyLrhuh eqlyekuksa ds nkf[kys ij blj kbZy dh ikcUnh vk,n fd;s tkus dh Hkh 'knhn etEer dh x;h lg;wuh fj;klr dks [kcjnkj fd;k x;k fd bl us fdcyk&,& vOoy esa eqlyeku uekft;ksa ds nkf[kys ij ikcUnh vk,n djds viuh rckgh dks nkor nh gSA bl vdnke ij fl QZ fQfyLrhu gh ugha cfYd iwjh eqLye vkSj vjc nqfu;k ds lkFk vkyeh cjknjh dh tkfuc ls Hkh lg;wuh fj;klr dks lafu urk,t Hkqxrus gksaxsA gekl i fQfyLrhuh vFkkfjVh ds lj cjkg egewn vCckl ds ukdkeh bunkekl sekaxksa ls fd;k fd og blj kbZy ls nksLrh] rvYyqdkr vkSj ekSdkjsrr dh ckrsa djuk NksM+nsa blj kbZy eksdkjsrr lsekaxksa ls iwjs djus okyk ugha A efLtns vdlk eksdkjsrr ls lg;wuh rlYyqr ls vktkn ugha gksxh cfYd bl ds fy, x`g ekenqh dqkbZu;ksa nsuh iMsxhA

nkbZ kus **46** dckbZy;ksa dks dRy dj fn;k

bZjkd + ds exjch 'kgj vUckj esa tkatwq ksa us viuh eqlkfyQ + dchysds **46** vQjkn dks Qk;fjax djds dRy dj fn;k gSA vkSj ipk lkS [kkunkuksa dk egkl jsk dj fy;k gSA nkbZ k ds tkatwq ksa us xfq'rk rhu jkst + ls lqdsl gjkes nj cnj gksus okys [kkunkuksa dk ekgkl jk dj j[kk gSA vkSj vc bl [krjs dk btgkj fd;k tk jgk gS fd budk btrekbZ dRy vke fd;k tk ldrk gSA fl D;ksafd vkSj dckbyh t jk;s us dgk fd nkbZ k us viuh eqlkfyQ + vcquej dchys ds Hkh fu'kkuk cukus dh /kedh nh gSA vkSj mUgksa ls nkbZ nkjksa gqdwer jekn h ds tuk"h bl dfcys ds ikfrl ukStokuksa dks dRy dj fn;k gSA bl ds vykok mUgksa bl dchys ds ljnkj [kkunku ds edkukssa vkSj tk;nknksa dk Hkh ?ksjko dj fy;k gSA